जैनग्रंथों में वैश्य की स्थितिः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ0 राज कुमार

जवाहर कन्या +2 विद्यालय,

झींगनगर (बिहार शरीफ)

निबन्धसार/सारांश–

ईसा पूर्व छठी शताब्दी एक ऐसा महत्वपूर्ण चरण है जहाँ से ऐतिहासिक तथ्यों को समझने के लिए पुरातात्विक सामग्रियों के साथ–साथ जो साहित्यिक स्रोत मिलते हैं, उनमें जैन साहित्य महत्वपूर्ण है। नगर–राज्यों का विकास, लोहे का व्यापक प्रयोग, अहिंसा, वैश्यों एवं शूद्रों की बेहतर दशा और वैदिक व्यवस्था पर चोट का प्रथम चरण यही शताब्दी रहा है और ऐसी दशा कुषाणों के काल तक फलती–फूलती रही। इस काल में सामाजिक प्रतिष्ठा की आवश्यकता सर्वप्रथम वैश्यों और शूद्रों द्वारा और राजनीतिक प्रतिष्ठा क्षत्रियों द्वारा विशाल रूप में महसूस की गयी। वैदिक धर्म–व्यवस्था अब सामाजिक विकास में बाधा के रूप में दिखाई देने लगा। समाज की आर्थिक स्थिति ठीक होती जा रही थी। महावीर जैन के नेतृत्व में वैदिक धर्म के अनेक दोषों का पर्दाफाश किया गया, जिसकी जानकारी जैन साहित्य से भी होती है। आबादी बढ़ने से आर्यों का विस्तार आधुनिक बिहार प्रान्त के मिथिला क्षेत्र तक हो गया था। लौह–औजारों का प्रयोग बढ़ने से कृषि – पैदावार में वृद्धि हुई और वैश्यों का दो वर्ग हुआ। एक बड़ा वर्ग कृषि एवं शिकार से जुड़ा रहा तथा दूसरा छोटा वर्ग व्यापारियों का हो गया। कृषि योग्य भूमि का विस्तार होता रहा और शूद्र भी इस पेशा से जुड़ने लगे। कृषि में पशुओं की आवश्यकता थी। अतः अधिक से अधिक पशुओं की सुरक्षा की आवश्यकता वैश्यों और शूद्रों द्वारा महसूस की जाने लगी। पशुचारी व्यवस्था टूटने लगी। व्यापार से जुड़ा वैश्य, दिन पर दिन धनवान होने लगा। समाज में उनकी आर्थिक शक्ति से किसी वर्ग की तुलना नहीं की जा सकती थी।

संकेत शब्द–

वैश्य, शूद्र, साहित्यिक स्रोत, नगर राज्य, अंहिसा, महावीर, अधिशेष–उत्पादन, व्यापारी वर्ग।

परिचय–

उत्तर वैदिक काल में वर्ण–व्यवस्था का आगमन हुआ। ऋग्वैदिक कालीन तीन वर्ग से जो गुण–कर्म पर आधारित था, उससे उत्तरवैदिक काल में चार वर्ग आया। यह चार वर्ण है– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। वैश्य वर्ण की आबादी शूद्र वर्ण से कम है और अन्य वर्ण से अधिक है। परम्परा से मान्य है कि यह यज्ञ पुरुष की जंघा से उत्पन्न हुआ है। वास्तविकता है कि यह सामान्य विश वर्ग से आया है। सामाजिक अनुक्रम में इसका स्थान तीसरा है। यह वर्ण उत्पादन कर्म (कृषि, शिल्प) से जुड़ा रहा और सीमित रूप से पशुपालन व व्यापार–वाणिज्य से भी जुड़ा रहा। यह भी विशेषाधिकार युक्त वर्ण रहा और अध्ययन से जुड़ा रहा। यह एक मात्र करदायी वर्ण (टैक्स देने वाला वर्ण) रहा।

अध्ययन क्षेत्र–

जैन धर्म मुख्यतः समानता के सिद्धान्त पर आधारित था। महावीर ने जाति–प्रथा का विरोध किया और अपने धर्म का द्वार सभी जातियों के लिए खोल दिया था। उनका कहना था कि संसार की सभी जीवों की आत्मा एक–सी है। मोक्ष–प्राप्ति के लिए किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा सकता था। जब जैन धर्म ने सभी तरह के नियंत्रणों से समाज को मुक्त करने को निश्चय बतलाया तो पद–दलित मानवता स्वाभाविक रूप से इसकी ओर आकृष्ट हुई। जन–साधारण ने इस नवीण धर्म को अपना समर्थन दिया। इसी पृष्ठभूमि में जैन साहित्यों में वर्णित वैश्यों की दशा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

उद्देश्य–

(i) जैन साहित्यों में वर्णित वैश्यों की सामाजिक जीवन का अध्ययन।

(ii) जैन साहित्यों में वर्णित वैश्यों की आर्थिक स्थिति का अध्ययन।

(iii) जैन ग्रन्थों में वर्णित वैश्यों की राजनीतिक जीवन का अध्ययन।

(iv) जैन ग्रन्थों में वर्णित वैश्यों की धार्मिक जीवन का अध्ययन।

वैश्य की स्थिति/दशा–

उत्तरवैदिक काल में वर्ण व्यवस्था का आगमन हुआ। ऋग्वैदिक कालीन तीन वर्ग से उत्तरवैदिक काल में गुण–कर्म पर आधारित चार वर्ण का आगमन हुआ। यह चार वण हैं– ब्राह्मण वर्ण, क्षत्रिय वर्ण, वैश्य वर्ण और शूद्र वर्ण। ब्राह्मण वर्ण की आबादी सबसे कम रही। परम्परा से मान्य है कि यह यज्ञ पुरुष के मुख से उत्पन्न हुआ है, लेकिन वास्तविकता है कि यह पुरोधा वर्ग से आया है। सामाजिक अनुक्रम में इसका स्थान प्रथम रहा। इनका कार्य रहा–पुरोहिती, याज्ञिक और अध्ययन–अध्यापन। इसे सामाजिक और धार्मिक श्रेष्ठता प्राप्त है। क्षत्रिय वर्ण की आबादी ब्राह्मण से अधिक और अन्य से कम है। परम्परा से मान्य है कि यह यज्ञ पुरुष की भुजा से उत्पन्न हुआ है, लेकिन वास्तविकता है योद्धा वर्ग से आया है। सामाजिक अनुक्रम में इसका स्थान द्वितीय है। यह रक्षा, शासनिक और सैनिकी कर्म से जुड़ा हुआ है। इसे राजनीतिक श्रेष्ठता प्राप्त है। वैश्यों वर्ण की आबादी शूद्र वर्ण से कम है और अन्य वर्ण से अधिक है। परम्परा से मान्य है कि यह यज्ञ पुरुष की जंघा से उत्पन्न हुआ है। वास्तविकता है कि यह सामान्य विश वर्ग से आया है। सामाजिक अनुक्रम में इसका स्थान तृतीय रहा है। यह वर्ण कृषि, शिल्प कर्म से जुड़ा रहा है और सीमित रूप से पशुपालन व व्यापार–वाणिज्य से भी जुड़ा रहा है। यह भी विशेषाधिकार युक्त वर्ण रहा और अध्ययन से जुड़ा रहा। यह एक मात्र वर्ण है जो कर देता है। शूद्र वर्ण की आबादी सबसे अधिक है। परम्परा से मान्य यह यज्ञ पुरुष के पैर से उत्पन्न हुआ। वास्तविकता है कि यह आर्य और आर्य भिन्न दोनों के मेल से यह वर्ण आया है। आर्य में यह सामान्य विश वर्ग से उत्पन्न माना गया है। सामाजिक अनुक्रम में इसका स्थान चतुर्थ रहा। यह वर्ण अध्ययन से कट गया। यह एक मात्र विशेषाधिकार मुक्त वर्ण रहा।

वर्ण–व्यवस्था का उत्तरवैदिक काल में विरोध नहीं था। यह जो वर्ण–व्यवस्था थी गुण–कर्म आधारित थी। कर्म ही वर्ण के पहचान थे। कर्म बोलते तो वर्ण जान लेते। चारों वर्ण में बेहतर मेल–मिलाप, सामाजिक समरसता, खान–पान बरकरार थी। कर्मानुसार ही कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र हो सकता था। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में (जैन काल) गौतम धर्मसूत्र आया और इसने चारों वर्ण के कर्म को स्पष्ट प्रतिपादित कर दिया कि जो चार वर्ण रहेंगे वे शास्त्र के अनुसार क्या कर्म करेंगे। वैदिकोत्तर काल में

गौतम धर्मसूत्र साहित्य की ओर से वर्ण–व्यवस्था के तहत् आपद् धर्म विधान दिया गया। आपद् धर्म विधान का अर्थ है– आपत्ति काल का धार्मिक विधान। इस विधान के तहत् यह बताया गया कि–

1. यदि आपत्ति काल है और आपत्ति काल में ब्राह्मण को अपने स्वधर्म पर कायम रहते जीविका चलानी मुश्किल है तो ब्राह्मण अपने से नीचे एक वर्ण के कर्म को अपना सकते हैं।

2. यदि आपत्ति काल है और आपत्ति काल में क्षत्रिय को अपने स्वधर्म पर कायम रहते हुए जीविका चलानी मुश्किल है तो क्षत्रिय अपने से एक नीचे वर्ण यानि वैश्य के कर्म को अपना सकते हैं।

3. यदि आपत्ति काल है और आपत्ति काल में वैश्य को अपने स्वधर्म पर कायम रहते हुए जीविका चलानी मुश्किल है तो वे अपने से एक नीचे वर्ण के और अपने से ऊपर एक वर्ण यानि शूद्र और क्षत्रिय दोनों के कर्म को अपना सकते हैं।

4. यदि आपत्ति काल है और आपत्ति काल में शूद्र को अपने स्वधर्म पर कायम रहते हुए जीविका चलानी मुश्किल है तो फिर शूद्र वर्ण अपने से एक ऊपर यानि वैश्य वर्ण के कर्म को अपना सकते हैं।

इसलिए आपद् धर्म विधान ने ब्राह्मण की पहचान विशेषता को बरकरार रखा और क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र की पहचान विशेषता को गायब कर दिया। यह मूल वर्ण–व्यवस्था में भारी परिवर्तन है। जब तक वर्ण–व्यवस्था अपने मौलिक रूप में थी तब तक किसी को इससे आपत्ति नहीं थी, लेकिन आपद् धर्म विधान ने इसके स्वरूप को ही बदलना शुरू कर दिया। इसलिए अब तो असंतुष्टि, नाराजगी स्वभाविक है। इसलिए ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र एक मंच पर आते चले गये। क्षत्रियों को इस बात से भी नाराजगी है कि ब्राह्मण गौतम धर्मसूत्र साहित्य के जरिये मूल वर्ण–व्यवस्था को कर्म आधारित से जन्म आधारित करने जा रहे हैं। इससे तो क्षत्रिय हमेशा से ब्राह्मण से पीछे रह जायेंगे। ब्राह्मण ने क्षत्रिय के खिलाफ कठोरतम कथनों का इस्तेमाल किया है। जैसे– क्षत्रिय राजा सबका राजा है ब्राह्मण का नहीं। ब्राह्मण अपने द्वारा अनुशासित होते हैं किसी राजा के निर्देश से नहीं। ऐसे ही यदि

ब्राह्मण पुरुष किसी क्षत्रिय महिला से विवाह करता है तो अनुलोम विवाह है और यह स्वभाविक है। यदि क्षत्रिय पुरुष किसी ब्राह्मण कन्या से विवाह करता है तो यह प्रतिलोम विवाह होगा और यह निषिद्ध होगा।

आपद् धर्म विधान से वैश्य को कई खतरा नजर आ रहा है–

1. उनके और शूद्र वर्ण के बीच कोई दूरी नहीं रह जायेगी।

2. क्षत्रिय के कर्म को अपनाने से कोई आर्थिक लाभ नहीं है। इसलिए ऊपर वर्ण की ओर बढ़ने में फायदा नहीं और नीचे वर्ण की ओर बढ़ने में खतरा ही खतरा है।

3. इस व्यवस्था के तहत् ब्राह्मणों ने उसकी पहचान विशेषता कृषि, शिल्प, व्यावार–वाणिज्य के एकाधिकार को समाप्त कर दिया है। इसलिए अब कृषि कर्म और व्यापार–वचाणिज्य से क्षत्रिय और शूद्र दोनों जुड़ सकते हैं। इसलिए उसकी पहचान एकाधिकार कहाँ रही?

4. वैश्य वर्ण को इस बात से भी नाराजगी है कि ब्राह्मण साहित्य कर्म आधारित व्यवस्था को जन्म आधारित करने की कोशिश में है। इसलिए वैश्य वर्ण को लग रहा है कि हमारे वर्ण में ही वणिक, गहपति, ग्रामिणी, सेट्ठि, श्रेष्ठी, इम्भ, कर्षक और कौटुम्बिक है। सम्पूर्ण उत्पादन कार्य से हम जुड़े हुए हैं। आर्थिक गतिविधियाँ हमारे द्वारा संचालित होती है। करदायी केवल हम हैं और तब हमें तीसरे वर्ण पर रख दिया गया।

वैदिकोत्तर काल में कृषि योग्य भूमि का विस्तार हो रहा है, कृषि–उपकरणों में भारी सुधार हो रहा है, लोहे के हल–फाल आ गये हैं इसलिए बेहतर जुताई सम्भव है, पिटवाँ लोहा का स्थान ढलवाँ लोहा ने ले लिया, इसलिए बेहतर कृषि उपकरण सामने आया। इस कृषि में भारी तरक्की से वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र सभी खूश हैं। इस खूशी के बीच एक व्यवधान नजर आ रहा है वह ब्राह्मण है। ब्राह्मण यज्ञ और यज्ञ से जुड़ी हिंसा का समर्थन कर रहे हैं। जिस याज्ञिक हिंसा के जरिये सैकड़ों पशुओं की बलि चढ़ाई जाती है। उससे कृषि में व्यवधान सम्भावित है। इसलिए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब यज्ञ का विरोध और यज्ञ से जुड़ी हिंसा का विरोध चाहते हैं।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में अनुलोम विवाह से छः (6) वर्णसंकर जाति और प्रतिलोम विवाह से पाँच (5) वर्णसंकर जाति का आगमन हुआ। इन ग्यारह (11) वर्णसंकर जातियों में कुछ वर्णसंकर जातियों को वर्ण–व्यवस्था में जगह नहीं दिया गया। इन्हें शूद्र की समकक्षता भी नहीं दी गयी। इन्हें वर्ण–व्यवस्था से बाहर करके अस्पृश्य और अछूत कहा गया। इससे वैश्य, शूद्र और क्षत्रिय में काफी असंतोष पैदा हुआ।

वैदिकोत्तर काल में स्पष्ट आर्थिक संगठन का आगमन हुआ। ऐसे आर्थिक संगठन में गण, पूग और संघ है। शिल्पियों के संगठन को गण, व्यापारियों के संगठन को पूग और महाजनों के संगठन को संघ कहा गया। ब्राह्मणों ने इन आर्थिक संगठनों की स्वायत्तता का विरोध किया। इस वजह से आर्थिक संगठनों की भूमिका अत्यन्त सीमित हो गयी। ब्राह्मणों ने महाजनी प्रथा, सूद का विरोध किया और ब्याज से प्राप्त धन को दूषित धन बताया। इन कारणों से वैश्यों की आर्थिक स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ा और साथ ही उनके सामाजिक स्थिति पर भी प्रभाव पड़ा।

महावीर काल में आठ (8) नगर वास्तविक रूप से सामने आये। यह नगर मांग केन्द्र, वितरण केन्द्र, आपूर्ति केन्द्र और उत्पादन केन्द्र बनें, जिससे व्यापार–वाणिज्य का विकास हुआ। इस काल में पहली बार भारत में तीन मार्ग का उभरना हुआ–

प्रथम मार्ग – उत्तरापथ।

दूसरा मार्ग – राजगृह से ताम्रलिप्ति (बंगाल)।

तीसरा मार्ग– वाराणसी से भरूकच्छ (गुजरात)।

यह व्यापार–वाणिज्य के लिए सकारात्मक उपलब्धि है। इस दौर में तीन बन्दरगाह भी विकसित हुआ। यह तीन बन्दरगाह है– ताम्रलिप्ति, भड़ौंच, सूर्पारक। इसके परिणामस्वरूप वैश्यों की सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ी और आर्थिक विकास हुआ।

शालिगाम में वैश्य जाति में उत्पन्न गंगादित्य नाम का एक व्यक्ति रहता था, जो जन्म से दरिद्र था। उसी गाँव में स्थाणु नाम का एक बनिया रहता था। दोनों में दोस्ती हो गयी थी। महाश्रेष्ठी का पुत्र सागरदत्त का विवाह रूप, धन, वैभव एवं शील में समान एक वणिक् कुल की कन्या से हुआ था। व्यापारी

समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति समझे जाते थे। यद्यपि वे अच्छे योद्धा नहीं होते थे, तथापि उनकी समृद्धि आदि के कारण राजदरबारों में उनकी पर्याप्त प्रतिष्ठा होती थी। वैश्यों की कई उपजातियाँ भी थीं, किन्तु वैश्य वर्ण में वे सभी व्यक्ति सम्मिलित किये जा सकते थे जो व्यापार से अपना व्यवसाय चलाते थे। राजस्थान की वैश्य जातियाँ अपनी उत्पत्ति क्षत्रियों से बतलाती हैं, किन्तु उस समय के शूद्र भी वैश्य होते जा रहे थे, जो व्यापार में प्रवीण एवं प्रतिष्ठित होने लगे थे। धनदेव यद्यपि शूद्रजाति में उत्पन्न था, किन्तु व्यापारिक मण्डल में उसका भव्य स्वागत किया जाता था। इससे ज्ञात होता है कि वैश्य जाति व्यवसाय के अनुरूप निर्मित हो रही थी। कृषि अपनाने के कारण शूद्र वैश्य हो रहे थे तथा आर्थिक सम्पन्नता के कारण उनको सम्मान मिलने लगा था। कुवलयमाला में उल्लिखित धनदेव का भी सार्थवाह होने के कारण सोपारक के व्यापारिक संगठन द्वारा सम्मानित किया जाना इस बात का प्रमाण है।

वैश्य धन–सम्पन्न होते, जमीन–जायदाद और पशुओं के मालिक होते तथा व्यापार द्वारा धन का उपार्जन करते थे। जैनसूत्रों में कितने ही वैश्यों का उल्लेख है जो जैन धर्म के अनुयायी (समणोवासग) थे, और जिन्होंने संसार को त्याग कर निर्वाण प्राप्त किया था। वाणियग्राम के धन–सम्पन्न आनन्द के पास अपरिमित हिरण्य–सुवर्ण, गाय–बैल, हल, घोड़ा–गाड़ी, वाहन, यानपात्र आदि मौजूद थे। वह विविध भोगों का उपभोग करते हुए समय–यापन किया करता था। पारासर एक दूसरा वैश्य था जो कृषि कर्म में कुशल होने के कारण किसिपारासर नाम से विख्यात था। 600 हलों का वह स्वामी था। कुविकर्ण के पास बहुत–सी गाएँ थीं। गोसंखी कुटुंबी को आमीरों का स्वामी कहा गया है। उसका पुत्र अपनी गाड़ियों को घी के घड़ों से भरकर चम्पा में बेचने के लिए जाया करता था। नन्द राजगृह का एक प्रभावशाली श्रेष्ठी था जिसने बहुत–सा धन व्यय करके पुष्करिणी का निर्माण कराया था। भरत चक्रवर्ती का गृहपति–रत्न सर्वलोक में प्रसिद्ध था, शालि आदि विविध धान्यों का वह उत्पादक था और भरत के घर सब प्रकार के धान्यों के हजारों कुंभ भरे रहते थे।

बौद्ध साहित्य में 'गृहपति' शब्द का प्रयोग मुख्यतः वैश्यों के लिए ही हुआ है। इसके अतिरिक्त उनके लिए वणिक, महासाल, सेट्ठी आदि शब्दों का भी प्रयोग होता था। इस साहित्य में इनके विविध रूपों का उल्लेख मिलता है, जैसे– काष्ठवणिक्, फलवणिक, सकरवणिक, स्तंबवणिक, तृणवणिक् आदि। इन लोगों ने

अपनी परिस्थिति के अनुसार व्यवसायों को स्वीकार कर लिया था। वे संघों और सार्थवाहों के साथ रहकर व्यापार कार्य करते थे। व्यापार में इनके द्वारा भ्रष्टाचार भी होता था। इसका उदाहरण वारूणीजातक में इस प्रकार मिलता है– ''एक शराब के व्यापारी ने अपने शिष्य को शराब बेचने के लिए कहा, उसके शिष्य ने उसमें नमक मिलाकर उसे दूषित कर दिया। वैश्यों के धन–संग्रह की कर्मठता, दानशीलता के उदाहरण प्राप्त होते हैं। यह दान देने में अग्रगण्य थे। श्रावस्ती नगर के प्रमुख श्रेष्ठी अनाथपिंडक ने भिक्षुसंघ को प्रभूत दान दिया था। वैश्यों का सम्बन्ध राजपरिवार के लोगों से भी रहता था। इनको राजसभा में आमात्यमंडल एवं ब्राह्मणों की भाँति समान स्थान प्राप्त होता था। गृहपति समय पर आवश्यकतानुसार समाज के अन्य वर्गों को ऋण देता था जिससे सूद (लाभ) लेता था। वैश्य समाज के लिए आश्रययुक्त होता था। वैश्यों में जो अपने धन–वैभव के कारण 'श्रेष्ठी' कहे जाते, उनका समाज में अत्यन्त उच्च स्थान था।

निष्कर्ष–

खेती, व्यापार तथा पशुपालन आदि के द्वारा आजीविका करने वाले वैश्य कहलाए। जिनसेन ने आजीविका के आधार पर जाति व्यवस्था प्रतिपादित की थी, पर आगे चलकर इसने जन्मना वर्ण–व्यवस्था का रूप ग्रहण कर लिया। ऋग्वैदिक समाज में चार वर्णों का अस्तित्व था– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र। इस वर्ण विभाजन की चर्चा ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 'पुरुषसूक्त' में मिलती है। इस वर्ण विभाजन के बावजूद सामाजिक गतिशीलता बाधित नहीं हुई थी क्योंकि वर्णव्यवस्था का आधार कर्म था। कर्म में परिवर्तन के साथ ही वर्ण में परिवर्तन हो जाता था। जैन कालीन आर्थिक संरचना ने तत्कालीन सामाजिक ढाँचे को भी प्रभावित किया। इस काल में वर्ण व्यवस्था का सीधा सम्बन्ध जन्म से हो गया। सभी वर्णों के दायित्व व कर्त्तव्यों को परिभाषित किया गया लोहे का प्रयोग कृषि में होने से अधिशेष उत्पादन होने लगा, जिससे व्यापार–वाणिज्य का विकास हुआ। आठ नगरों का उदय, सिक्कों का प्रचलन, आर्थिक संगठनों का उदय, तीन बन्दरगाहों का विकास और तीन मार्ग के उभरने से व्यापार–वाणिज्य में काफी तेजी आई। इन आर्थिक परिवर्तनों ने वैश्यों की स्थिति को सुदृढ़ कर दिया और उन्हें आर्थिक रूप से सम्पन्न बना दिया। वैश्य वर्ण ने व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया, धन सम्पत्ति अर्जित की। अब यह वर्ण गाँवों से दूर

शहरी केन्द्रों में रहने लगा और भौतिक जीवन की सुख सुविधाओं की ओर उन्मुख हुआ, जिससे नगरीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला।

सन्दर्भ सूची

1. आदिपुराण
2. गौतम धर्मसूत्र
3. कुवलयमाला
4. आवश्यकचूर्णी
5. उत्तराध्ययनसूत्र